Journal of Advances and Scholarly Researches in Allied Education
Vol. 13, Issue No. 1, April-2017, ISSN 2230-7540

रामचरितमानस में पर्यावरणीय सम्पन्नता

Suman Lata[1]* Prof. Manvendra Pathak[2]

[1] Research Scholar, Kumaun University, Nainital, Uttarakhand

[2] Research Director, Department Literature, Acharya Hindi and Director Research and Broadcasting Department, Kumaun University, Nainital, Uttarakhand

----------X----------

रामचरितमानस में पर्यावरणीय सम्पन्न्ता के कतिपय संक्षिप्त संकेतों का अवलोकन करें तो श्रद्धेय गोस्वामी तुलसीदास जी का वृक्षारोपण को एक स्वाभाविक कार्य मानने एवं 'मानस' में वर्णित प्रकृति में उपलब्ध औषधीय तत्वों का प्रतीकात्मक रूप तथा जैविक विविधता एवं मानस में वैयक्तिक वृत्ति और पर्यावरण का समन्व्य आदि बिन्दु गोस्वामीजी की विलक्षण प्रतिभा को उजागर करते है। इन्ही बिन्दुओं की गहराई प्रकृति, पर्यावरण और प्रगति की ओर भी संकेत करती है

प्रकृति, पर्यावरण, प्रगति के मध्य अन्तः सम्बन्ध है जिनके प्रति मानवीय दृष्टिकोण सांस्कृतिक विरासत से निर्मित एवं विकसित होता है और इस संदर्भ में भारतीय हिन्दू संस्कृति की वैश्विक भूमिका प्राचीनकाल से ही मानी गयी है। पर्यावरण अध्ययन, पर्यावरण संरक्षण हिन्दू संस्कृति के अभिन्न अंग रहे है। बाल्मीकि रचित 'रामायण' से लेकर तुलसीदास रचित 'रामचरित मानस' में प्रकृति चित्रण, पर्यावरण संचेतना, पर्यावरण संरक्षण का विस्तृत उल्लेख किया गया है। वास्तव में हिन्दू धर्म एक विशिष्ट पूजा पद्धति, आस्था तक ही सीमित नहीं है वरन जैसा कि भारतीय सर्वोच्च न्यायालय ने भी हिन्दू धर्म को परिभाषित करते हुए कहा है कि 'हिन्दूधर्म एक जीवन शैली है।' हिन्दू धर्म की इस जीवन शैली में धर्म तथा पर्यावरण में सह-सम्बन्ध माना गया है। जिसके अन्तर्गत पर्यावरण प्रकृति के साथ मानव द्वारा उचित, संवेगात्मक एवं सामन्जस्यपूर्ण सम्बन्ध निभाना ही उसका धर्म है। पृथ्वी को 'धरती माता' के रूप में पूजित माना गया तथा सूर्य, जल, वायु, वृक्ष, अग्नि सभी को देवता मानकर पूजनीय माना गया केवल यही नहीं विभिन्न देवी-देवताओं के वाहक के रूप में विभिन्न पशु-पक्षियों की भी आराधना की पद्धति विकसित की गयी। जल, वायु को दूषित करना, वृक्षों का अनावश्यक रूप से कटाव करना को पाप माना जाता था क्योंकि उस समय ऋषि, मुनियों को पर्यावरण के इन महत्त्वपूर्ण घटकों के महत्त्व का ज्ञान था। तत्कालीन भारतीय सामाजिक जीवन में पर्यावरणीय तत्त्वों के साथ सामंजस्य की भावना धर्म से जुड़ी हुई थी।

लेकिन 'पाश्चात्य भौतिकवाद की अवधारणा पर आधारित प्रगति के स्वरूप एवं दिशा ने आज इक्कीसवीं शताब्दी में पर्यावरण प्रदूषण के रूप में मानव जाति के अस्तित्त्व को ही चुनौती प्रस्तुत कर दी है। वायु प्रदूषण, जल प्रदूषण ध्वनि प्रदूषण, मृदा प्रदूषण, रेडियो एक्टिव प्रदूषण, ओजोन परत में छिद्र, अम्लीय वर्षा इत्यादि का अत्यन्त विनाशकारी स्वरूप बृद्धिजीवी, विवेकशील, वैज्ञानिकों, की चिन्ता का कारण बन चुके है। लम्बे समय तक भौतिक विकास के विनाशकारी मद में मदोन्मत्त लोगों की सुप्त पर्यावरण चेतना अब जागृत हो रही है तथा इस भौतिकवादी प्रगति के पुरोधा भी पर्यावरण संरक्षण की बात करने लगे है। मानव समाज किस समय कौन सी समस्या से ग्रस्त होता है और उसके निदान के लिए समाज के सदस्यों की भूमिका एवं सहभगिता एवं शासकीय प्रयासों की तुलना में अधिक उस समाज के सांस्कृतिक मूल्य अधिक प्रभावी होते हैं। इस संदर्भ में भारतीय संस्कृति के आधार पुरातन ग्रन्थ-वेद, उपनिषद, पुराण, रामायण के साथ-2 तुलसीदास जी द्वारा रचित 'रामचरित मानस' का अध्ययन व विश्लेषण अत्यन्त लाभप्रद हो सकता है विशेषकर 'रामचरित मानस' का क्योंकि वर्तमान समय में घर-घर में न केवल रामचरितमानस एक पवित्र ग्रन्थ के रूप में पूजा जाता है। वरन इसका पाठ पारिवारिक व सामाजिक स्तर पर किया जाता है।

रामचरित मानस में पर्यावरण के संदर्भ में वर्णन करते हुए कहा है कि उस समय पर्यावरण प्रदूषण कोई समस्या नहीं थी। पृथ्वी के अधिकांश भू-भाग पर वन-क्षेत्र होता था। शिक्षा के केन्द्र आबादी से दूर ऋषि-मुनियों के वनों में स्थित आश्रम हुआ करते थे। श्रीरामचन्द्र जी ने भी अपने भाईयों सहित महर्षि विश्वामित्र जी से उनके आश्रम में ही शिक्षा ग्रहण की थी। समाज में ऋषि-

www.ignited.in

मुनियों का बड़ा सम्मान था। प्रतापी राजा-महाराजा भी इन ऋषि-मुनियों के सम्मुख नतमस्तक होने में अपना सौभाग्य समझते थे। यही करण है कि जब श्रीराम को बनवास हुआ तो उन्हें सर्वाधिक प्रसन्नता इसी बात की हुई थी कि उन्हें वन-क्षेत्र में ऋषि-मुनियों के सत्संग का लाभ प्राप्त होगा-

मुनिगन मिलन विशेष वन, सबहिं भांति हित मोर।

श्रीराम को भविष्य में रामराज्य की स्थापना करनी थी जिसमें मानव-जीवन को सुखमय बनाने हेतु मानव-प्रकृति, जीव-वनस्पति, सभी में सामंजस्य पर आधारित समवेती विकास सम्भव हो सके। रामचरित मानस में हम पाते हैं कि विभिन्न प्राकृतिक अवयवों को मात्र उपभोग की वस्तु नहीं माना गया है बल्कि सभी जीवों तथा वनस्पतियों से प्रेम का सम्बन्ध स्थापित किया गया है। प्रकृति के अवयवों का उपभोग निषिद्व न होकर आवश्यकतानुसार कृतज्ञतापूर्वक उपभोग की संस्कृति प्रतिपादित की गयी है जैसे कि वृक्ष से फल तोड़कर खाना तो उचित है लेकिन वृक्ष को काटना अपराध है-

'रीझि-खीझी गुरूदेव सिष सखा सुसाहित साधु।

तोरि खाहु फल होई भलु तरु काटे अपराधू'।।

रामराज्य धरती पर अनायास स्थापित नहीं किया जा सकता है इसके लिए प्राकृतिक पर्यावरण संरक्षण की संस्कृति विकसित करने की आवश्यकता है जैसा कि तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में वर्णित किया है कि श्रीरामचन्द्र जी के विवाहोपरान्त बारात लौटकर अयोध्या आती है तो अयोध्या नगरी में विविध पौधों का रोपण किया जाता है-

सफल पूगफल कदलि रसाला।

रोपे बकुल कदम्ब तमाला।।

पौधा-रोपण की संस्कृति को विकसित करने के लिए श्रीराम ने अपने वन-प्रवास के दिनों में सीता जी व लक्ष्मण जी के साथ विस्तृत पौधारोपण की ओर सकेंत करते हुए कहा कि-

तुलसी तरुवर विविध सुहाय।

कहुँ कहुँ सिएँ, कहुं लखन लगाये।।

शुभ अवसर पर पौधा-रोपण की संस्कृति से आज के सबसे भयावह संकट-पर्यावरण प्रदूषण से मुक्ति संभव है। इसीलिए रामराज्य में प्रकृति के उपहार स्वतः प्राप्त थे। तुलसीदास जी ने रामराज्य में वनों की छटा और उनसे मिलने वाले उपहारों का सजीव चित्रण करते हुए वर्णन किया है कि

'फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन।

रहहि एक संग गज पंचानन।।

खग मृग सहज बयरु बिसराई।

सबन्हिं परस्पर प्रीति बढ़ाई।।

कूजहिं खग मृग नाना वृंदा।

अभय चरहिं बन करहिं अनंदा।।

सीतल सुरभि पवन बह मंदा।

गुंजत अलि लै चलि मकरंदा।।

लता बिटप माँगे मधु चवहीं।

मन भावतो धेनु पय स्रवहीं।।

ससि सम्पन्न सदा रह धरनी।

त्रेता भइ कृतयुग के करनी।।

प्रगटी गिरिन्ह विविध मनि खानि।

जगदातमा भूप जग जानी।।

सरिता सकल बहहिं बर बारी।

सीतल अमल स्वाद सुखकारी।।

सागर निज मरजादा रहहीं।

डॉ. रहिं रत्न तटन्हि नर लहहिं।।

सरसि संकुल सकल तड़ागा।

अति प्रसन्न दस दिसा विभागा।।

बिधु महि पूर मयूखन्हि रवि जय जेतनेहिं काजा।।

मांगे बारिद देहिं जल रामचन्द्र के काज।।'

उत्तरकांड, दो. के अग्रिम, 1 से 5 चै. एवं दो. 23

www.ignited.in

प्रकृति का सीमित विदोहन ही मानव-जीवन के सुखमय भविष्य की गारंटी है। प्रकृति द्वारा प्रदत्त वस्तु का उपयोग हमें प्रकृति से अनावश्यक छेड़छाड़ किये बिना करना चाहिए। ऐसी सामाजिक संस्कृति को पुनः प्रतिष्ठित करने की आवश्यकता है जिसका वर्णन तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में किया है।

पर्यावरण संरक्षण से प्रकृति संरक्षण ही नहीं होता है वरन इसके साथ-2 मानव जाति के स्वास्थय सम्बन्धी समस्याओं का निदान भी होता है। रामायण तथा रामचरितमानस में 'संजीवनी बूटी' का प्रसंग द्योतक है कि प्रकृति में उपलब्ध दुर्लभ बूटी-संजीवनी से मृत प्रायः शरीर भी जीवित हो सकता है आवश्यकता केवल उन औषधीय जड़ी-बूटियों के विषय में ज्ञान की है। भारत में आयुर्वेद चिकित्सा प्रणाली प्राकृतिक जड़ी-बूटियों के औषधीय गुणों पर ही आधारित है परन्तु पाश्चात्य ऐलोपेथी चिकित्सा प्रणाली के प्रचार प्रसार ने इस आयुर्वेदीय चिकित्सा प्रणाली को न केवल अत्यधिक हानि पहुँचाई वरन् इसको अनुपयोगी सिद्ध करने में भी कोई कोर कसर नहीं रखी है। स्वतन्त्र भारत में रामराज्य की परिकल्पना करते हुए राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने 'यंग इण्डिया' मे लिखा था – 'अंग्रेजों ने निश्चय ही चिकित्सा व्यवसाय का उपयोग हमें दासता में बांध रखने के लिए सफलतापूर्वक किया है। पाश्चात्य चिकित्साशास्त्र का अध्ययन करना हमारी दासता बढ़ाना है। यह प्रणाली बहुत खर्चीली है इसे स्वयं डाक्टर भी जानते है। इसमें रोग परीक्षा के लिए रक्त-परीक्षा, मल-परीक्षा, कफ-परीक्षा आदि कितनी ही प्रकार की परीक्षाएं चलती है, जिन पर काफी खर्च पड़ जाता है। डाक्टरों की फीसें बहुत मंहगी होती है। इसका विकास यूरोपीय देशों में हुआ है, उन्हीं देशों के जलवायु में पली हुई जनता के रहन-सहन, आहार-विहार को दृष्टि में रखकर ही यह प्रणाली बनाई गयी है। परिणामस्वरूप ये औषधियाँ भारतीय जनता की प्रकृति, जलवायु-सम्बधी दशाओं के बिल्कुल अनुपयुक्त सिद्ध हुई है। रोगियों पर इनका कुप्रभाव देखने में आता है। ऐलोपेथिक औषधियों को तैयार करने में प्रायः तीव्र सुरा, स्पिरिट का उपयोग होता है' जिनका प्रयोग प्रायः अपने यहाँ निषिद्ध माना जाता है। इन औषधियों का प्रयोग रोग निरोग के लिए किया जाता है। रोग-परीक्षा में भूल हुई तो विपरीत परिणाम अवश्यम्भावी है। यह दोष आयुर्वेद में नहीं है; क्योंकि इसमें दोषों के विपरीत औषध-प्रयोग होता है। अतः रोग का नाम निश्चित न होने पर भी दोष-विपरीत औषधि लाभ कर देती है।

इसलिए प्रकृति में उपलब्ध औषधीय गुणों से भरपूर वनस्पति का ज्ञान मानवजाति के स्वास्थ्य के लिए परम आवश्यक है और इस ज्ञान का सर्वोत्तम स्त्रोत रामायण तथा रामचरित मानस माने जा सकते हैं क्योंकि तुलसीदास जी ने विस्तृत रूप से इन औषधीय गुणों से भरपूर प्राकृतिक जड़ी-बूटियों का उल्लेख किया है। रामचरितमानस में प्रकृति में उपलब्ध औषधीय तत्वों का प्रतीकात्मक रूप से बहुत ही सुन्दर वर्णन किया हैं। इस संदर्भ में तीन दृष्टान्त अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं जिनमें सर्वाधित चर्चित दृष्टान्त-युद्ध के समय लक्ष्मण जी के मूर्छित होने पर लंका से वैद्य सुसैन को बुलाया जाना और संजीवनी बूटी द्वारा लक्ष्मण जी का उपचार करना है जिसका उल्लेख करते हुए तुलसीदास जी ने लिखा हैं-

'राम पदारबिंद सिर नायउ आइ सुशेन।

कहा नाम गिरि औषधी जाहु पवन सुत लेन।।

देखा सैल न औषध चीन्हा।

सहसा कपि उपरि गिरि लीन्हा।

गहि गिरि निसि नभधावत भयऊ।

अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ।।

हरषि राम भेटेउ हनुमाना।

अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना।

तुरत वैद तब कीन्ह उपाई।

उठि बैठे लछिमन हरषाई'।।

दूसरा दृष्टान्त भगवान राम द्वारा सती अहिल्या को पाषाण (मूर्छित) अवस्था से चरण धूलि द्वारा जीवित अवस्था में लाना-

'जे पद परसि तरी रिषिनारी।

दंडक कानन पावनकारी।।'

वास्तव में यह भगवान राम के किसी चमत्कार का परिणाम नहीं था बल्कि इससे पूर्व जब भगवान राम गुरु विश्वामित्र से विद्या ग्रहण कर रहे थे तो गुरु विश्वामित्र ने उन्हें कुछ औषधियों से विभूषित किया था जो बिना भोजन तथा जल के शरीर को स्वस्थ रख सकती थीं।

'तब रिशि निज नाथहि जियँ चीन्ही।

विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्ही।।

www.ignited.in

जते लाग ना छुधा पिपासा।

अतुलित बल तनु तेज प्रकाश।।'

तीसरा दृष्टान्त हिन्दू संस्कृति में हरिभजन को अर्थात भक्तिभाव को औषधी से भी अधिक लाभकारी मानने की संस्कृति रही है इस सांस्कृतिक पक्ष को तुलसीदास जी ने काक भुषुण्डिजी के माध्यम से कहा है कि-

'जासु नाम भव भेषज हरन घोर त्रय सूल।

सो कृपाल मोहि तो पर सदा रहउ अनुकूल।।'

इसी संदर्भ मे तुलसीदास जी गरुढ़ के माध्यम से कहते हैं कि हे तात! आपके समान कोई बड़भागी नही है, संत, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथ्वी - इस सब की क्रियाएँ पराए हित के लिए ही होती है अर्थात् पूर्ण समर्पण और भक्ति भाव किसी चमत्कारी औषधी से कहीं अधिक फलदायी हो सकता है या लाभन्वित कर सकता है।

'पूरन काम राम अनुरागी।

तुम्ह सम तात न कोउ बड़भागी।।

संत विटप सरिता गिरि धरनी।

पर हित हेतु सबन्ह के करनी।।'

प्रतीकात्मक रूप में श्रीरामचन्द्र जी की उपस्थिति प्रकृति को सम्पन्न बनाती है। इस तथ्य को सांकेतिक रूप से तुलसीदास जी अरण्यकांड में कहते है।

'जब ते राम कीन्ह तहँ बासा।

सुखी भए मुनि बीती त्रासा।

गिरि वन नदी ताल छबि छाए।

दिन दिन प्रीति अति होहि सुहाय।।'

तुलसीदास जी ने स्पष्ट संकेत दिए हैं कि श्रीराम जी की उपस्थिति से पर्यावरणीय चेतना अत्याधिक सम्पन्न होती है साथ ही उनके प्रति भक्तिभाव भी जनसाधारण के कष्टों को हरण करता है, अर्थात भक्ति-ज्ञान और विज्ञान से भी श्रेष्ठ है।

'सो सुतंत्र अवलंब न आना।

तेही आधीन ज्ञान विग्याना।।

भगति तात अनुपम सुखमूला।

मिलइ सो संत होइँ अनुकूला।।'

आज के संदर्भ में यदि हम देखें जैसे मानव जाति ने वैश्विक स्तर पर ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्र में उन्नति की है उसी अनुपात में मानव जाति आध्यात्म से दूर होती गई है सृष्टि के भक्ति भाव में हरास होता गया है परन्तु यह भक्तिभाव ही है जो व्यक्ति को ज्ञान और विज्ञान के स्वार्थमय क्षेत्र से निकालकर सम्पूर्ण मानव जाति के हित में सोचने व कार्य करने के लिए प्रेरित करता है जिसके कारण मनुष्य में पर्यावरण चेतना जागृत होती हैं।

तुलसीदास जी ने मांगलिक अवसर पर पर्यावरण व प्रकृति संवर्धन हेतु पौधारोपण का अनुपम विधान का वर्णन करते हुए रामचरितमानस में श्रीरामचन्द्र जी के विवाहोपरान्त राज्याभिषेक के मांगलिक अवसर पर गुरु वशिष्ठ के आदेश को उद्धृत करते हुए कहा है-

'वेद विदित कहि सकल विधाना।

कहेउ रचहु पुर विविध बिताना।।

सफल रसाल पूगफल केरा।

रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा।।'

तुलसीदास जी ने जहाँ भी, जैसे भी सम्भव हुआ रामचरितमानस में वृक्षारोपण को एक स्वाभाविक कार्य बना दिया। अपने वन प्रवास के दिनों में सीताजी एवं लक्ष्मण जी द्वारा विस्तृत रोपण किया गया-

'तुलसी तरुवर विविध सुहाए।

कहुँ कहुँ सियँ कहुँ लखन लगाए।।'

तुलसीदास जी का संकेत है- कि वृक्षारोपण की प्रवृत्ति युगधर्म है जिससे हमें प्रदूषण से मुक्ति मिलती है। रामचरितमानस में पर्यावरण चेतना को विस्तार पूर्वक दिया गया है क्योंकि तुलसीदास जी ने सामाजिक व्यवस्था व विज्ञान के मध्य समन्व्य व तादात्म्य स्थापित करने का विस्तृत वर्णन किया है जिसका प्रमाण रामचरितमानस के प्रथम अध्याय बालकांड में ही दृष्टिगोचर होता है जिसमें तुलसीदास जी ने शिव पार्वती विवाह के संदर्भ में पर्यावरण चेतना और इसके आवश्यक अवयवों को वैज्ञानिक ढंग से प्रतिपादित किया है जैसे कि

www.ignited.in

पार्वती शिव से विवाह ना कर सके इस हेतू उन्हें बताया गया कि महादेव जी ने काम को ही भस्म कर डाला है-

'कहा हमार न सुनेहु तब नारद के उपदेस।

अब भा झूठ तुम्हार पन जारेउ कामु महेस।।'

इसके प्रत्युत्तर में पार्वती जी ने मुस्कुराकर कहा-

'हमरे जान सदा सिव जोगी।

अज अनवद्य अकाम अभोगी।।

तुम्ह जो कहा हर जारेउ मारा।

सोइ अति बड़ अविवेकु तुम्हारा।।'

'तात अनल कर सहज सुभाऊ।

हिम तेहि निकट जाहू नहिं काऊ।।

गएँ समीप सो अवसि नसाई।

असि मन्मथ मेहस की नाई।।'

भगवान शिव का रूप पर्यावरण चेतना के परिप्रेक्ष्य में अत्याधिक महत्त्व रखता है क्योंकि शिव के वेश में प्रकृति के संरक्षण का विज्ञान समाहित है जिसमें भगवान शिव के सिर पर सबसे ऊपर गंगाजी हैं- जो कि चन्द्रमा द्वारा संरक्षित है जिसका अभिप्राय यह है कि जल को उच्चतम या सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई हैं जिसे चन्द्रमा बनाए रखता है और चन्द्रमा को नवीकरण एवं पुनस्थापित उर्जा का स्त्रोत माना जाता है। चन्द्रमा सूर्य से उर्जा ग्रहण करता है इस प्रकार गंगा और चन्द्रमा का भगवान शिव के सिर पर एक साथ होना नवीकरण एवं पुनः स्थापित हरित उर्जा के अविनाशी स्त्रोत की ओर संकेत करता है इसी प्रकार भगवान शिव का नीलकंठ स्पष्ट संदेश देता है कि विषैले रसायन तत्त्व कंठ तक ही सुरक्षित होने चाहिए। औद्योगिक विषैले रासायनिक तत्त्व हमारे भोजन अथवा जल स्त्रोत तक नहीं पहुँचने चाहिए इस प्रकार भगवान शिव का स्वरूप पर्यावरणवादी तथा प्रदूषण विरोधी है-

'सिवहि संभुगन करहिं सिंगारा।

जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा।।

कुंडल कंकन पहिरे ब्याला।

तन विभूति पट केहरि छाला।।

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा।

नयन तीनि उपबीत भुजंगा।।

गरल कंठ उर नर सिर माला।

असिब वेष सिवधाम कृपाला।।

कर त्रिसूल उरु डमरु विराजा।

चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा।।

देखि सिवहिं सुरत्रिय मुसुकाहीं।

बर लायक दुलहिनि जग नाहीं।।'

भगवान शिव ने दूल्हे के रूप में जटाओं का मुकुट बनाकर उस पर सांपों का मोर सजाया जिसका अर्थ है कि विषैले तत्त्व जल में सम्मिलित होकर जल को प्रदूषित नहीं कर पांएगें।

जैविक विविधता की आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए कहा गया है कि भगवान शिव द्वारा सांपों को गले में हार की तरह और शरीर पर शेर की त्वचा को वस्त्र की तरह धारण करने से संकेत दिया गया है कि यदि प्रकृति के जीवों को सुरक्षित नहीं किया गया तो इससे पर्यावरण का इतना नुकसान होगा कि सम्भव है कि यह सम्पूर्ण जगत समाप्त होकर भस्म में परिवर्तित हो जाएगा। इसीलिए भगवान शिव ने अपने शरीर को भस्म से सज्जित किया था साथ-साथ ध्वनि प्रदूषण की ओर संकेत करते हुए भगवान शिव के हाथ में डमरू दर्शाया गया है। शिव रूप में पर्यावरण का प्रतिनिधित्व करने वाले जल (गंगा) वायु (चन्द्रमा) प्रकाश या उष्मा (सूर्य) तथा भूमि (शेर और सांप) के साथ-साथ नन्दी बैल स्पष्ट करते हैं कि प्रकृति तथा गाय का संरक्षण सुनिश्चित होना चाहिए।

तुलसीदास जी ने मानवीय संवेदनाओं, प्रवृतियों के अनुरूप सामाजिक वातावरण की प्रवृतियों, परिवर्तनों के साथ प्राकृतिक पर्यावरण की प्रवृतियों के समन्व्य का विस्तृत चित्रण किया है जिसका विस्तृत विश्लेषण वर्तमान वैश्विक पर्यावरण के संदर्भ में न केवल भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों की पुनं प्रतिष्ठा बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के अस्तित्त्व के दृष्टिकोण से भी अपरिहार्य है।

तुलसीदास जी ने वैयक्तिक वृत्ति और पर्यावरण के समन्व्य को भली भाँति समझा है। व्यक्ति द्वारा तामसिक भाव से किए जाने

वाले सात्विक कार्यों के परिणाम को अनुचित की ओर संकेत करते हुए कहा है कि-

तामस धर्म करहिं नर जप तप व्रत मख दान।

देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान।।'

संत प्रवृत्ति और दुष्ट प्रवृत्ति के मध्य अन्तर को पर्यावरण व वनस्पति के संदर्भ में समझाते हुए तुलसीदास जी लिखते हैं-

'संत संहहि दुख पर हित लागी।

पर दुख हेतु असंत अभागी।।

भूर्ज तरु सम संत कृपाला।

पर हित निति सह बिपति बिसाला।।

पर संपदा विनासि नसाहीं।

जिमि ससि हति हिम उपल बिलाहीं।।

दुष्ट उदय जग आरति हेतू।

जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू।।'

रामचरित मानस में मानवीय गुणों व अवगुणों के आधार पर भी पर्यावरणीय परिवर्तनों को समझा जा सकता है। गुणवान अथवा धर्मशील पुरुष की प्रकृति पर पर्यावरणीय प्रकृति को निरूपित करते हुए तुलसीदास जी कहते है-

'फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि निअराई।

पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसंपति पाइ।।

मानव समाज और पर्यावरण का आपसी समन्व्य अति आवश्यक हैं इसके विपरीत जब पर्यावरण प्रदूषण होता हैं तब मौसम में होने वाले नकारात्मक परिवर्तन सम्पूर्ण विश्व को ग्रसित करते है। मानवीय चेतना और पर्यावरण के मध्य वियोग उत्पन्न होने पर वातावरण का गरम होना स्वाभाविक है जो कि आज विश्व की सबसे बड़ी समस्या बन चुका है इस सत्य को तुलसीदास जी ने श्रीरामचन्द्रजी तथा सीता जी के वियोग के प्रतीक स्वरूप समझाते हुए लिखा है कि-

'कहेउ राम वियोग तव सीता।

मो कहुँ सकल भए विपरीता।।

नव तरु किसलय मनहुँ कृसानु।

काल निसा सम निसि ससि भानू।।

कुबलय विपिन कुंत बन सरिसा।

बारिद तपत तेल जनु बरिसा।।

जे हित रहे करत तेइ पीरा।

उरग स्वास सम त्रिविध समीरा।।

तुलसीदास जी ने रामचरितमानस में पर्यावरणीय सम्पन्नता की पराकाष्ठा को छुआ है पर्यावरण के संरक्षण के लिए मानवीय सतत प्रयास समपर्ण और परिश्रम आवश्यक है जब व्यक्ति और पर्यावरण के मध्य संगम होता है तब प्रकृति का स्वरूप मानव के प्रति सकारात्मक होता है। जहाँ जहाँ श्री राम ने निवास किया वहीं प्रकृति का सौन्दर्य की अद्भुत छटा विकीर्ण हो गई।

'कहेउ राम वियोग तव सीता।

मो कहुँ सकल भए विपरीता।।

'जहँ जहँ जाहिं देव रघुराय।

करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया।।'

'सुन्दर वन कुसमित अति सोभा।

गुंजत मधुप निकर मधु लोभा।।

कंद मूल फल पत्र सुहाए।

भए बहुत तग ते प्रभु आए।।'

"सन्दर्भ ग्रन्थ सूची"

आधार ग्रन्थ-

1. आरोग्य अंक, गीता प्रेस, गोरखपुर, संवत 2072
2. श्रीरामचरितमानस, गीता प्रेस गोरखपुर संवत 2072
3. वाल्मीकि रामायण

सहायक ग्रन्थ-

1. डॉ. रामनाथ शर्मा एंव राजेन्द्र कुमार शर्मा, भारतीय समाज, संस्थायें और संस्कृति, एटलांटिक पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्युटर्स, नई दिल्ली

2. ब्रहमवर्चस, आयुर्वेद का प्राणः वनौषधि विज्ञान, वेदमाता गायत्री ट्रस्ट, शांन्ति कुंज, हरिद्वार, तृतीय संस्करण 2013

3. विश्वनाथ त्रिपाठी, लोकवादी तुलसीदास, राधा कृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, पहला संस्करण 1974

4. अंजलि श्रीवास्तव, पर्यावरण संरक्षण, नमन प्रकाशन, नई दिल्ली 2001

5. किरण कुमारी गुप्त, हिन्दी काव्य में प्रकृति चित्रण, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रकाशन, प्रयाग,1959

6. विद्यानिवास मिश्र, रामायण का काव्यमर्म, प्रभात प्रकाशन आसफ अली रोड, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2001

पत्रिका

आयुर्वेद का प्राण, शातिकुंज हरिद्वार

Corresponding Author

Suman Lata*

Research Scholar, Kumaun University, Nainital, Uttarakhand